International Research Journal of Humanities, Language and Literature ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.959 Volume 8, Issue 02, Feb 2021
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)

Website-www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

गाँधी जी की आर्थिक संकल्पना

डॉ० राजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, बी०बी० नगर,
बुलन्दशहर (उ०प्र०)

गाँधी जी का विचार था कि हमारे पास पर्याप्त जनशक्ति होने के बाद भी हम बेरोजगारी, अर्द्धबेरोजगारी छद्म बेकारी के कारण उस जनशक्ति का पूर्ण प्रयोग नहीं कर पाते हैं। गाँधी जी का मानना था कि शहरों के विकास से ही भारत का कल्याण नहीं होगा अपितु हमें गाँवों का भी विकास करना होगा क्योंकि उनका पक्का विश्वास था कि सच्चा भारत उनके गाँव में बसता है और भारत का भविष्य तब तक उज्ज्वल नहीं होगा जब तक ये गाँव उस जीवन में उचित भाग नहीं लेंगे। गाँधीजी के आर्थिक विचार, सादगी, अहिंसा श्रम की प्रतिष्ठा तथा मानव सम्मान के 4 मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उन्होंने पूँजीवाद का विरोध किया क्योंकि पूँजीवाद से मानव श्रम का शोषण होने के कारण हिंसा की आशंका बनी रहती है तथा देश की संपत्ति तथा शक्ति कुछ सीमित लोगों में केन्द्रित हो जाती है। ''पूँजीवाद मशीनों के अत्यधिक प्रयोग पर बल देता है फलस्वरूप अत्यधिक लोग बेरोजगार या अल्पकालिक बेरोजगार हो जाते हैं, जिससे लोगों में हिंसा की भावना पनपती है। परिणामस्वरूप पूँजीवादी लोगों को पूँजी की सुरक्षा पुलिस तथा अन्य हिंसात्मक उपायों द्वारा करनी पड़ती है। इस कारण गाँधी जी उत्पादन में यंत्रीकरण तथा बड़े पैमाने की उत्पादन प्रणाली के पक्ष में नहीं थे।''[1]

इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए गाँधी जी ने 30 दिसंबर 1943 ई० को हरिजन पत्रिका में लिखा था कि– ''यदि हम भारत में अहिंसात्मक प्रकार का विकास करना चाहते हैं तो हमें बहुत–सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना होगा क्योंकि केन्द्रीयकरण की पद्धति को पर्याप्त शक्ति का प्रयोग किए बिना कदापि सुरक्षित नहीं रख सकते। धनी लोगों के घरों की डाकुओं से रक्षा करने के लिए पुलिस की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बड़े कारखानों को भी हिफाजत की आवश्यकता होती है।''[2]

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

अर्थात् अधिक धन अर्जित करने से चोरी डकैती, मार–काट संघर्ष से बचने हेतु बहुत–सी सावधानियाँ या सैनिक इत्यादि रखने होंगे जबकि हम यदि वही धन देशहित में लगाते हैं तो ऐसी समस्या नहीं होगी।

वस्तुतः गाँधी जी कोई अर्थशास्त्री नहीं थे और न ही उन्होंने अर्थशास्त्र पर कोई पुस्तक ही लिखी किन्तु उनके आर्थिक संकल्पना की झलक हमें उनके भाषणों, कर्मों तथा लेखों से मिलती है। सी०एन० वकील ने उनके अधिक विचारों पर बात करते हुए कहा है– ''गाँधीवादी आर्थिक विचारधारा जैसी कोई चीज नहीं है। उनके विचारों की व्याख्या करके उन्होंने जो कहा है, जो किया है उसके आधार पर ही हम आर्थिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण जान सकते है।''[3]

गाँधी जी का दृष्टिकोण हम निम्न बिंदुओं के आधार पर जान सकते हैं–

1. सादगी तथा आवश्यकता संबंधी विचार–

गाँधी जी सादगी पर विशेष बल देते थे, उनके अनुसार आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य उपभोग नहीं वरन् त्याग है। उन्होंने जीवन की मूलभूत आवश्यकता भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं चिकित्सा को ही अनिवार्य बताया और सभी आवश्यकताओं को सीमित करने पर बल दिया। वे सादा जीवन उच्च विचार के समर्थक थे। उनके अनुसार– ''सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए आवश्यकताओं का सीमित होना आवश्यक है।''[4]

2. ट्रस्टीशिप का विचार–

वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था की खामियों को दूर करने के लिए तथा आर्थिक समानता लाने के लिए गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत के अनुसार समस्त निजी संपत्ति को एक ट्रस्ट की सम्पत्ति समझना चाहिए। पूँजी का स्वामी अपने आपको समाज का ट्रस्टी समझे और अपना कर्त्तव्य समझकर संपत्ति की उचित देखभाल करे तथा उनका प्रयोग देशहित में ही करें। वे पूँजी मालिकों से पूँजी छीनकर उसे शब्द की सम्पत्ति घोषित करने के पक्ष में नहीं थे। गाँधी जी ने कहा है– ''पूँजीपतियों का पूँजी पर अधिकार रहेगा जिसमें से वह उतने ही भाग का प्रयोग करेगा जितना की उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए जरूरी है और शेष धन का वह ट्रस्टी के रूप में देखभाल करेगा और उसका प्रयोग समाज हित में किया जायेगा।''[5]

गाँधी जी का विश्वास था कि ये लोग भी समाज का ही अंग है उनका अपना महत्व है। अतः उन्हें समाप्त करने के स्थान पर उनका हृदय परिवर्तन होना जरूरी है। धन का समान रूप से वितरण हो इसके लिए ही उन्होंने ट्रस्टीशिप की योजना बनाईं इस योजना का मुख्य उद्देश्य बिना हिंसा के पूँजीवादी

व्यवस्था के मुख्य दोष अन्यायपूर्ण धन के वितरण को समाप्त करना था। किन्तु उनका यह विचार यथार्थ रूप में सफल हो ऐसा संभव नहीं है। यह उपयोगी होते हुए भी समाज में लागू नहीं किया जा सकता है।

3. वर्ण व्यवस्था का आर्थिक स्थिति में योगदान–

गाँधी जी प्राचीन वर्ण व्यवस्था पर आधारित श्रम विभाजन को समाज के लिए उपयोगी मानते थे। उनका विचार था कि वर्ण व्यवस्था (कर्म आधारित) में प्रत्येक व्यक्ति को अपने माता–पिता का व्यवसाय पैतृक रूप से प्राप्त हो जाता है जिससे उसकी आर्थिक समस्या सरलता से हल हो जाती है। पुत्र अपने पिता के रोजगार को आसानी से अपनाकर उसमें दक्षता प्राप्त कर लेता है क्योंकि वह प्रतिदिन उस कार्य को होते हुए देखता है किन्तु यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि ''वे एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय को अपनाने के विरुद्ध नहीं थे किन्तु व्यवसाय परिवर्तन देश हित में हो न कि निजी लाभ के लिए हो।''[6]

एक प्रकार से वे जाति व्यवस्था का समर्थन करते थे किन्तु भेदभाव रहित समाज का निर्माण भी चाहते थे।

4. व्यक्तिवाद –

गाँधी जी व्यक्तिवाद के घोर समर्थक थे उनका विचार था कि राज्य को व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कम से कम प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। उनके विचार से प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए उनके अनुसार– मनुष्य अपने कार्य पर स्वयं बड़ा निर्णायक होता है। राज्य की बढ़ती हुई शक्ति उसे सदा भयभीत करती है क्योंकि प्रकट रूप में यह समाज में व्याप्त शोषण को कम करके समाज का हित करती है परन्तु प्रगति के मूल रूप में यह मानव जाति का सबसे अधिक अहित करती है।

5. कृषि संबंधी विचार–

भारतीय अर्थव्यवस्था में गाँधी जी ने कृषि को सर्वोच्च स्थान दिया। वे कृषि की महत्ता पर बल देते हुए कहते थे कि भारत गाँवों का देश है तथा कृषि उसकी आत्मा है। उनका विश्वास था कि भारत की आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने का एकमात्र व्यवसाय कृषि है। गाँधी जी भूमि को प्रकृति का निःशुल्क उपहार मानते थे जिस पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। वे भूमि पर कृषकों का स्वामित्व चाहते थे। ''यदि कोई देश अपनी मूलभूत आवश्यकताओं– भोजन, कपड़ा, मकान की पूर्ति स्वयं कर सकता है तो उसे आजाद नहीं कहा जा सकता।''[7] हमारी खेती, अर्थनीति एक ऐसी चीज हैं जो हमें अपने पाँव पर खड़ा कर सकती है। हमारा देश हमेशा से खेतिहर रहा है और जो भी उद्योग धन्धे यहाँ चलते थे, वे खेती से मिले–जुले होते थे। इसलिए आवश्यक है कि हमें आत्मनिर्भरता हेतु इन्हें पुनः स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। गाँधी जी प्रत्येक गाँव को आत्मनिर्भर बनाना चाहते

थे। कृषकों की ऋणग्रस्तता की समस्या से मुक्ति दिलाने के लिए सहकारी साख समितियों के विकास पर बल देते थे।

6. कुटीर–उद्योग धन्धों पर बल–

गाँधी जी ने ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योग धन्धों पर विशेष बल देते थे क्योंकि इससे एक ओर तो स्वदेशी की भावना को बल मिलता है वहीं दूसरी ओर श्रम शक्ति की प्रतिष्ठा होगी। उनके अनुसार इससे पूँजी का केन्द्रीकरण भी नहीं होगा और उत्पादन भी केन्द्रित नहीं होगा, जिससे शोषण में कमी आयेगी।

गाँधी जी चाहते थे कि ''खेतीहर भूमि का समाजीकरण हो जिससे खेतीबाड़ी और सिंचाई का काम सामूहिक रूप से हो सके। पैदावार बढ़े और खेतीहर मजदूर को अपने श्रम का पूरा लाभ मिले।''[8]

7. प्रतिस्पर्धात्मक यंत्रीकरण का विरोध–

गाँधी जी प्रतिस्पर्धा के तहत बड़े उद्योग और उसमें प्रयोग होने वाले यंत्रों का विरोध करते थे। वे मूलतः मशीनों के विरुद्ध नहीं थे किन्तु मशीनों के कारण मनुष्य बेरोजगार हो जाए उस स्थिति में वे मशीनों का विरोध करते थे। वे मशीनों को उसी स्थिति में स्वीकार किए जाने के पक्षधर थे जब मनुष्य मशीन का नियन्त्रित करे न कि मशीनें मनुष्य को नियन्त्रित करने लगें। वे बेरोजगारी पैदा करने वाले निरन्तर बढते मशीनी स्वचालन के विरुद्ध थे। यंत्रीकरण का यह विरोध भारत की आर्थिक स्थिति पर आधारित था। ''यंत्रीकरण उस स्थिति के लिए ठीक है जब काम अधिक हो और करने वाले कम हो किन्तु यदि काम कम और करने वाले अधिक हो जैसा कि भारत में है तब यंत्रीकरण एक बुराई है।''[9] गाँधी जी ने यंग इण्डिया में लिखा– ''मैं सभी यंत्रों के खिलाफ नहीं हूँ लेकिन इसके उपयोग को सीमित अवश्य करना चाहता हूँ क्योंकि मेरे विचार से यंत्र मनुष्य के लिए है, मनुष्य यंत्र के लिए नहीं।''[10]

8. पूँजी और श्रम के बीच समन्वय–

गाँधी जी पूँजी और श्रम के बीच समन्वय चाहते थे यही अधिक समानता का आधार है जिस प्रकार मजदूर के बिना मालिक पूँजी के होते हुए भी उत्पादन नहीं कर सकता है उसी प्रकार मजदूर पूँजी के अभाव में उत्पादन नहीं कर सकता है उद्योग स्थापित नहीं कर सकता है। दोनों के आपसी सहयोग से ही आर्थिक क्रिया सम्भव है। उनकी मान्यता थी मजदूर जितना श्रम करें उतना वेतन प्राप्त कर लें दूसरी और वे उद्योगपतियों के लिए कहते हैं– ''पूँजी से श्रम कहीं महत्त्वपूर्ण है, बिना श्रम के सोना, चाँदी, ताँबा आदि सब व्यर्थ बोझ बन जायेगा। श्रम के द्वारा ही पृथ्वी तल से बहुमूल्य खनिज पदार्थ निकाले जाते है।''[11]

उनके अनुसार– ''मजदूर के श्रम का मूल्य न मिलें तो यह पूँजीपतियों की अनैतिकता है और बढ़ा–चढ़ाकर माँगों के द्वारा मालिकों को डराकर उद्योग बन्द करवाना, मजदूरों की अनैतिकता है इसलिए इन दोनों में समन्वय होना चाहिए।''[12]

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गाँधी जी एक व्यवहारवादी अर्थशास्त्री थे। भारत की आर्थिक समस्याओं को उन्होंने नजदीक से देखा था और जो देखा उनके समाधान के लिए व्यावहारिक सुझाव दिए थे। चाहे वो ट्रस्टीशिप का सुझाव हो या अपनी आवश्यकताओं को कम करने पर बल हो अथवा यंत्रीकरण का सीमित उपयोग हो। कृषि को अत्याधिक बढ़ावा देना रहा हो या कुटीर उद्योगों पर बल देना उन्होंने हर संभव वो प्रयास किया। भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सके। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण भारत की जो आर्थिक दशा थी उसके कारण गाँधी जी ने भारत के लोगों के आर्थिक उत्थान हेतु समय–समय पर आर्थिक सुझाव दिए और स्वयं भी उनको अपने जीवन में उतारा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम०सी० वैश्य, आर्थिक विचारों का इतिहास, रतन प्रकाशन मन्दिर, गोरखपुर, पृ०सं० 606
2. वही, पृ०सं० 607
3. राजेश कुमार वर्मा व शिशिर कुमार वर्मा, आर्थिक विचारों का इतिहास, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ०सं० 583
4. वही, पृ०सं० 584
5. वही, पृ०सं० 584
6. डॉ० धीरेन्द्र दत्त, महात्मा गाँधी का दर्शन, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना (2016), पृ०सं० 82
7. जे०सी० कुमारप्पा, गाँधी अर्थ–विचार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ०सं० 22
8. रामरतन व शारदा शोभिक, महात्मा गाँधी की राजनैतिक अवधारणाएँ, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ०सं० 07
9. सतीश कुमार, गाँधीवाद : विविध आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ०सं० 588
10. यंग इण्डिया, दिनांक 13.11.1924
11. हरिजन, दिनांक 07.09.1947
12. धीरेन्द्र मोहन दत्त, महात्मा गाँधी का दर्शन, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना (2016), पृ०सं० 85